# शारदा-लिपि-दीपिका

## प्रस्तावना

मानव अपने अतीत का दर्शन अपने प्राचीन ग्रन्थों में करता है और इन्हीं के द्वारा अपने ज्ञान का आदान-प्रदान तथा विकास वर्तमान में भी करता रहता है। ग्रन्थ प्रत्येक देश, जाति और समुदाय को विकसित और सुसंस्कृत होने के लिए एक उत्कृष्ट भूमिका ही नहीं निभाते बल्कि बौद्धिक उन्नति तथा विकास के लिए प्राणभूत कहे जा सकते हैं। ग्रन्थों का शरीर उनके पत्र (कागज) आदि के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होकर तब तक एक निश्चेष्ट और मूक प्राणी की तरह है जब तक वह कुछ बोलना शुरू न करे। किन्तु यह बोलना उसकी लिपि के द्वारा ही होता है, जो कि भाषा के रूप में प्रस्फुटित होकर अपना सन्देश देती रहती है। हां, यदि हम उस लिपि को पढ़ सकें तभी। आज हम 'मोहन-जो-दारो' या 'हरप्पा' के ध्वंसावशेषों को देख सकते हैं परन्तु उन प्रस्तर खण्डों को, जिसे उन्होंने उत्कीर्ण कर भावी जनता को अपना परिचय एवं सन्देश देने के लिए रखा था, हम लिपि का ज्ञान न होने के कारण पढ़ने में अक्षम हैं। इसका कारण यही है कि काल के परिवर्तन के साथ मानव भी बदलता गया और लिपि को भी इतना भूल गया कि आज वह अपने अतीत को यथार्थरूप में जानने के लिये बढ़ती हुई उत्सुकता को पूर्ण करने के लिये सर्वथा साधनहीन सा प्रतीत होता है।

हमारे उत्तरीय भारत में प्रायः जितना भी प्राचीन ग्रन्थ भण्डार पाया गया है वह देवरागरी शारदा एवं अन्य अर्वाचीन क्षेत्रीय लिपियों में उपलब्ध हुआ है। इनमें अधिकतर मुद्रित हुए हैं और बहुत से अभी तक भी मुद्रित नहीं हो सके हैं।

पाश्चात्य लिपि विज्ञान तथा भाषा-शास्त्रियों ने भी गुरुमुखी का उद्भव शारदा लिपि से माना है। इन में सर जार्ज ग्रीयर्सन तथा वोगेल महाशय मुख्य हैं। श्री वोगेल साहेब लिखते हैं कि—

"Sarada was once extensively used both in the plains and hills of the Punjab.....it developed into Gurmukhi, Takari and other modern writings."

J. Ph. Vogel,

'Antiquities of Chamba State' Preface Page No. ii (1910 A. D.)

इसके अतिरिक्त भारतीय अनुसन्धान कर्ता तथा इतिहास[1] वेत्ताओं की भी प्रायः यही धारणा रही है।

## ५. टाकरी लिपि

यह लिपि भी शारदा लिपि को ही कुछ तोड़ मरोड़ कर बनाई गई है। इस को भी शारदा लिपि की पुत्री ही कह सकते हैं। इस का जन्म १४वीं, १५वीं शताब्दी में हुआ है ऐसा अनुमान है। इस लिपि का प्रचार जम्मू, कांगड़ा, एवं तराई वाले प्रदेशों में अधिक रहा और अब भी दृष्टिगोचर होता है। इस के कुछ अतिप्राचीन हस्त लिखित[2] ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं।

---

१. "सिखों का परिवर्तन" लाहौर में 'पिण्डीदास-पुस्तक भण्डार' द्वारा सम्पादित तथा प्रकाशित (सन् १९२०)

२. हमारे पास एक जीर्ण शीर्ण ग्रन्थ था। इसमें टाकरी, शारदा, गुरुमुखी और नागरी लिपि में लिखे गये विविध विषयों के पत्र थे। यह मैंने सन् १९५३ में पंजाब यूनिवर्सिटी चण्डीगढ़ भेज दिया था। पत्र पुराने कश्मीरी कागज के थे और पीले हो गये थे। इनमें चक्र, और तन्त्रमन्त्र प्रक्रियाऐं थी। एक काक भाषा विषयक शकुनशास्त्र भी था। यह सब मैंने सुरक्षित होने के लिये अपने एक मित्र प्रो. हंसराज अग्गर वाल (चण्डीगढ़) को यूनिवर्सिटी को देने के लिये भेज दिये थे। उनमें एक पत्र पर विक्रमी सम्वत् १५३५ लिखा था परन्तु कुछ पत्र इससे भी पुराने रहे होंगे।